अस्वीकार; जहाँ बीच में कुत्ता जैसा प्राणी खड़ा हो, मक्खियाँ भिनभिनाती हों वहाँ से भिक्षा का अस्वीकार; मत्स्य माँस [1]शराब आदि का अस्वीकार; कभी एक घर से एक कोर, कभी दो घर से दो कोर आदि की भिक्षा लेना, तो कभी एक उपवास, कभी दो उपवास आदि करते हुए पन्द्रह उपवास तक भी करना; दाढ़ी-मूछों का लुंचन करना, खड़े होकर और उक्कडु आसन पर बैठकर तप करना; स्नान का सर्वथा त्याग करके शरीर पर मल धारण करना, इतनी सावधानी से जाना-आना कि जलबिंदुगत या अन्य किसी सूक्ष्म जन्तु का घात न हो, सख्त शीत में खुले रहना अज्ञ और अशिष्ट लोगों के थूके जाने, धूल फेंकने, कान में सलाई घुसड़ने आदि पर रुष्ट न होना[2]।

बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित उक्त आचारों के साथ जैन आगमों में वर्णन किये गए निर्ग्रन्थ-आचारों का मिलान करते हैं तो इसमें संदेह नहीं रहता कि बुद्ध की समकालीन निर्ग्रन्थ-परंपरा के वे ही आचार थे जो आज भी अक्षरशः स्थूल रूप में जैन-परंपरा में देखे जाते हैं। तब क्या आश्चर्य है कि महावीर की पूर्वकालीन पार्श्वापत्यिक-परंपरा भी उसी आचार का पालन करती हो। आचार का कलेवर भले ही निष्प्राण हो जाए पर उसे धार्मिक जीवन में से च्युत करना और उसके स्थान में नई आचारप्रणाली स्थापित करना यह काम सर्वथा विकट है। ऐसी स्थिति में भ० महावीर ने जो बाह्याचार निर्ग्रन्थ-परंपरा के लिये अपनाया वह पूर्वकालीन निर्ग्रन्थ परंपरा का ही था, ऐसा मानें तो कोई अत्युक्ति न होगी; अतएव सिद्ध होता है कि कम से कम पार्श्वनाथ से लेकर सारी निर्ग्रन्थ-परंपरा के आचार एक से ही चले आए हैं।

(५)

चतुर्याम

बौद्ध पिटकान्तर्गत 'दीघनिकाय' और 'संयुत्त निकाय' में निर्ग्रन्थों के महाव्रत की चर्चा आती है।[3] 'दीघनिकाय' के 'सामञ्ञफलसुत्त' में श्रेणिक—बिंबिसार के पुत्र अजातशत्रु—कुणिक ने ज्ञातपुत्र महावीर के साथ हुई अपनी मुलाकात का वर्णन बुद्ध के समक्ष किया है, जिसमें ज्ञातपुत्र महावीर के मुख से

१. सूत्रकृताङ्ग २-२-२३ में निर्ग्रन्थ भिक्षु का स्वरूप वर्णित है। उसमें उन्हें 'अमज्जमंसासिणो'—अर्थात् मद्य-माँस का सेवन न करने वाला—कहा है। निस्संदेह निर्ग्रन्थ का यह औत्सर्गिक स्वरूप है जो बुद्ध के उक्त कथन से तुलनीय है।

२. दीघ० महासीहनाद सुत्त० ८। दशवै० अ० ५.; आचा० २. १.

३. दीघ० सु० २। संयुत्तनिकाय Vol 1. p. 66

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहलाया है कि निर्ग्रन्थ चतुर्यामसंवर से संयत होता है, ऐसा ही निर्ग्रन्थ यतात्मा और स्थितात्मा होता है। इसी तरह संयुत्तनिकाय के 'देवदत्त संयुत्त' में निंक नामक व्यक्ति ज्ञातपुत्र महावीर को लक्ष्य में रख कर बुद्ध के सम्मुख कहता है कि वह ज्ञातपुत्र महावीर दयालु, कुशल और चतुर्यामयुक्त हैं। इन बौद्ध उल्लेखों के आधार से हम इतना जान सकते हैं कि खुद बुद्ध के समय में और इसके बाद भी (बौद्ध पिटकों ने अन्तिम स्वरूप प्राप्त किया तब तक भी) बौद्ध परंपरा महावीर को और महावीर के अन्य निर्ग्रन्थों को चतुर्यामयुक्त समझती रही। पाठक यह बात जान लें कि याम का मतलब महाव्रत है जो योगशास्त्र (२. ३०) के अनुसार यम भी कहलाता है। महावीर की निर्ग्रन्थ-परंपरा आज तक पाँच महाव्रतधारी रही है और पाँच महाव्रती रूप से ही शास्त्र में तथा व्यवहार में प्रसिद्ध है। ऐसी स्थिति में बौद्ध-ग्रन्थों में महावीर और अन्य निर्ग्रन्थों का चतुर्महाव्रतधारी रूप से जो कथन है उसका क्या अर्थ है? यह प्रश्न अपने आप ही पैदा होता है।

इसका उत्तर हमें उपलब्ध जैन आगमों से मिल जाता है। उपलब्ध आगमों में भाग्यवश अनेक ऐसे प्राचीन स्तर सुरक्षित रह गए हैं जो केवल महावीर-समकालीन निर्ग्रन्थ-परंपरा की स्थिति पर ही नहीं बल्कि पूर्ववर्ती पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ-परंपरा की स्थिति पर भी स्पष्ट प्रकाश डालते हैं। 'भगवती' और 'उत्तराध्ययन' जैसे आगमों में[1] वर्णन मिलता है कि पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ—जो चार महाव्रतयुक्त थे उनमें से अनेकों ने महावीर का शासन स्वीकार करके उनके द्वारा उपदिष्ट पाँच महाव्रतोंको धारण किया और पुरानी चतुर्महाव्रत की परंपराको बदल दिया। जब कि कुछ ऐसे भी पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ रहे जिन्होंने अपनी चतुर्महाव्रत की परंपरा को ही कायम रखा[2]। चार के स्थान में पाँच महाव्रतों की स्थापना महावीर ने क्यों की—और कब की यह भी ऐतिहासिक सवाल है। क्यों की—इस प्रश्न का जवाब तो जैन ग्रन्थ देते हैं, पर कब की—इसका जवाब वे नहीं देते। अहिंसा, सत्य, असत्य, अपरिग्रह इन चार यामों—महाव्रतों की प्रतिष्ठा भ० पार्श्वनाथ के द्वारा हुई थी पर निर्ग्रन्थ परंपरा में क्रमशः ऐसा शैथिल्य आ गया कि कुछ निर्ग्रन्थ अपरिग्रह का अर्थ संग्रह न करना इतना ही करके स्त्रियों का संग्रह या परिग्रह बिना किए भी उनके सम्पर्क से अपरिग्रह का भंग समझते नहीं थे। इस शिथिलता को दूर करने के लिए भ० महावीर ने ब्रह्मचर्य व्रत को अपरिग्रह से अलग स्थापित किया और चतुर्थ व्रत में शुद्धि लाने का

१. 'उत्थान' महावीरांक (स्था० जैन कॉन्फरेन्स, मुंबई) पृ० ४६।

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयत्न किया। महावीर ने ब्रह्मचर्यव्रत की अपरिग्रह से पृथक् स्थापना अपने तीस वर्ष के लम्बे उपदेश काल में कब की यह तो कहा नहीं जा सकता पर उन्होंने यह स्थापना ऐसी बलपूर्वक की कि जिसके कारण अगली सारी निर्ग्रन्थ-परंपरा पंच महाव्रत की ही प्रतिष्ठा करने लगी, और जो इने-गिने पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ महावीर के पंच महाव्रत-शासन से अलग रहे उनका आगे कोई अस्तित्व ही न रहा। अगर बौद्ध पिटकों में और जैन-आगमों में चार महाव्रत का निर्देश व वर्णन न आता तो आज यह पता भी न चलता कि पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ-परंपरा कभी चार महाव्रत वाली भी थी।

ऊपर की चर्चा से यह तो अपने आप विदित हो जाता है कि पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ-परंपरा में दीक्षा लेनेवाले ज्ञातपुत्र महावीर ने खुद भी शुरू में चार ही महाव्रत धारण किये थे, पर साम्प्रदायिक स्थिति देखकर उन्होंने उस विषय में कभी न कभी सुधार किया। इस सुधार के विरुद्ध पुरानी निर्ग्रन्थ-परंपरा में कैसी चर्चा या तर्क-वितर्क होते थे इसका आभास हमें उत्तराध्ययन के केशि-गौतम संवाद से मिल जाता है, जिसमें कहा गया है कि कुछ पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थों में ऐसा वितर्क होने लगा कि जब पार्श्वनाथ और महावीर का ध्येय एक मात्र मोक्ष ही है तब दोनों के महाव्रत विषयक उपदेशों में अन्तर क्यों?[1] इस उधेड़-बुन को केशी ने गौतम के सामने रखा और गौतम ने इसका खुलासा किया। केशी प्रसन्न हुए और महावीर के शासन को उन्होंने मान लिया। इतनी चर्चा से हम निम्न-लिखित नतीजे पर सरलता से आ सकते हैं—

१ - महावीर के पहले, कम से कम पार्श्वनाथ से लेकर निर्ग्रन्थ-परंपरा में चार महाव्रतों की ही प्रथा थी, जिसको भ० महावीर ने कभी न कभी बदला और पाँच महाव्रत रूप में विकसित किया। वही विकसित रूप आज तक के सभी जैन फिरकों में निर्विवादरूप से मान्य है और चार महाव्रत की पुरानी प्रथा केवल ग्रन्थों में ही सुरक्षित है।

२—खुद बुद्ध और उनके समकालीन या उत्तरकालीन सभी बौद्ध भिक्षु निर्ग्रन्थ-परंपरा को एक मात्र चतुर्महाव्रतयुक्त ही समझते थे और महावीर के पंच-महाव्रतसंबन्धी आंतरिक सुधार से वे परिचित न थे। जो एक बार बुद्ध ने कहा और जो सामान्य जनता में प्रसिद्धि थी उसी को वे अपनी रचनाओं में दोहराते गए।

बुद्ध ने अपने संघ के लिए पाँच शील या व्रत मुख्य बतलाए हैं, जो संख्या की दृष्टि से तो निर्ग्रन्थ-परंपरा के यमों के साथ मिलते हैं पर दोनों में थोड़ा

---

१. उत्तरा० २३. ११–१३, २३–२७, इत्यादि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर है। अन्तर यह है कि निर्ग्रन्थ-परंपरा में अपरिग्रह पंचम व्रत है जब कि बौद्ध परंपरा में मद्यादि का त्याग पाँचवाँ शील है।

यहाँ एक प्रश्न यह भी होता है कि क्या खुद महावीर ने ब्रह्मचर्य रूप से नए व्रत की सृष्टि की या अन्य किसी परंपरा में प्रचलित उस व्रत को अपनी निर्ग्रन्थ-परंपरा में स्वतंत्र स्थान दिया? सांख्य-योग-परंपरा के पुराने से पुराने स्तरों में तथा स्मृति आदि ग्रन्थों में हम अहिंसा आदि पांच-यमों का ही वर्णन पाते हैं। इसलिए निर्णयपूर्वक तो कहा नहीं जा सकता कि पहले किसने पाँच महाव्रतों में ब्रह्मचर्य को स्थान दिया?

यद्यपि बौद्ध ग्रन्थों में बार-बार चतुर्याम का निर्देश आता है पर मूल पिटकों में तथा उनकी अट्ठकथाओं में चतुर्याम का जो अर्थ किया गया है वह गलत तथा अस्पष्ट है।[1] ऐसा क्यों हुआ होगा? यह प्रश्न आए बिना नहीं रहता। निर्ग्रन्थ-परंपरा जैसी अपनी पड़ोसी समकालीन और अति प्रसिद्ध परंपरा के चार यमों के बारे में बौद्ध ग्रन्थकार इतने अनजान हों या अस्पष्ट हों यह देखकर शुरू-शुरू में आश्चर्य होता है पर हम जब साम्प्रदायिक स्थिति पर विचार करते हैं तब वह अचरज गायब हो जाता है। हर एक सम्प्रदाय ने दूसरे के प्रति पूरा न्याय नहीं किया है। यह भी सम्भव है कि मूल में बुद्ध तथा उनके समकालीन शिष्य चतुर्याम का पूरा और सच्चा अर्थ जानते हों। वह अर्थ सर्वत्र प्रसिद्ध भी था इसलिए उन्होंने उसको बतलाने की आवश्यकता समझी न हो पर पिटकों को ज्यों-ज्यों संकलना होती गई त्यों-त्यों चतुर्याम के अर्थ स्पष्ट करने की आवश्यकता मालूम हुई। किसी बौद्ध भिक्षु ने कल्पना से उसके अर्थ की पूर्ति की, वही आगे ज्यों की त्यों पिटकों में चली आई और किसी ने यह नहीं सोचा कि चतुर्याम का यह अर्थ निर्ग्रन्थ-परंपरा को सम्मत है या नहीं? बौद्धों के बारे में भी ऐसा विपर्यास जैनों के द्वारा हुआ कहीं-कहीं देखा जाता है।[2] किसी सम्प्रदाय के मन्तव्य का पूर्ण सच्चा स्वरूप तो उसके ग्रन्थों और उसकी परंपरा से जाना जा सकता है।

(६)

उपोसथ-पौषध

इस समय जैन परंपरा में पौषध-व्रत का आचरण प्रचलित है। इसका प्राचीन इतिहास जानने के पहले हमें इसका वर्तमान स्वरूप संक्षेप में जान लेना चाहिए। पौषधव्रत गृहस्थों का व्रत है। उसे स्त्री और पुरुष दोनों ग्रहण करते हैं। जो

१. दीघ० सु० २। दीघ० सुमंगला पृ० १६७

२. सूत्रकृतांग १ २ २. २४–२८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org